प्रतिक्रमण और स्वास्थ्य

श्री चंचलमल चोरडिया

आत्मशुद्धि हेतु किया गया प्रतिक्रमण स्वतः ही मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति करा देता है। दूसरी तरफ बिना मानसिक संतुलन या स्वस्थता के भावपूर्वक प्रतिक्रमण करना भी संभव नहीं है। प्रतिक्रमण केवल आत्मा से ही जुड़ा हुआ नहीं है, इसका सीधा प्रभाव मन व शरीर के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। इस दृष्टिकोण से लेखक ने यहाँ छहों आवश्यकों का सुन्दर विवेचन किया है। -सम्पादक

प्रतिक्रमण क्या है?

प्रतिक्रमण स्वयं द्वारा स्वयं के दोषों का निरीक्षण, परीक्षण और समीक्षा की व्यवस्थित प्रक्रिया है। गलती होना मानव का स्वभाव है। उसको स्वीकारना मानवता है। प्रतिक्रमण गलती को गलती मानने, जानने और छोड़ने का पुरुषार्थ है। गलती को गलती मानने से भविष्य में पुनः गलतियाँ होने की संभावनाएँ कम रहती हैं। गलती को गलती न मानने वाला अन्दर ही अन्दर भयभीत, तनावग्रस्त एवं दुःखी रहता है। क्रोध एवं चिड़चिड़ेपन से लीवर और गालब्लेडर, भय से गुर्दे एवं मूत्राशय, तनाव एवं चिन्ता से तिल्ली, पेंक्रियाज और आमाशय तथा अधीरता एवं आवेग से हृदय एवं छोटी आँत तथा दुःख से फेंफड़े एवं बड़ी आँत की क्षमता घटती है।

स्वस्थ कौन एवं स्वास्थ्य क्या?

स्वस्थ का अर्थ होता है स्व में स्थित होना अर्थात् स्वयं पर स्वयं का नियंत्रण। स्वास्थ्य का अर्थ है रोगमुक्त जीवन। स्वास्थ्य तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है अर्थात् शरीर, मन और आत्मा तीनों जब ताल से ताल मिलाकर कार्य करें, शरीर की सारी प्रणालियाँ एवं सभी अवयव सामान्य रूप से स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करें, किसी के कार्य में कोई अवरोध न हो और उसको चलाने में किसी बाह्य वस्तु की आवश्यकता भी न पड़े तब व्यक्ति स्वस्थ होता है।। **मन, वचन और काया आत्मा की अभिव्यक्ति के तीन सशक्त माध्यम हैं। आत्मा ही जीवन का आधार होती है। आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर, मन और मस्तिष्क का कोई अस्तित्व नहीं होता और न स्वास्थ्य की कोई समस्या होती है। आत्मा के विकार ही रोग के प्रमुख कारण होते हैं। आत्मा के विकार मुक्त होने से शरीर, मन, वाणी और मस्तिष्क स्वतः स्वस्थ होने लगते हैं।**

इस दुनियाँ में इतने कष्ट नहीं हैं जितने आदमी भोगता है। वह भोगता है अपने अज्ञान के कारण। ज्ञानी के लिये शरीर में समाधान है, प्रकृति में समाधान है, वातावरण में समाधान है, वनस्पति जगत् में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान है, आहार-पानी-हवा और धूप के सम्यक् उपयोग एवं मन, वचन और काया द्वारा सम्यक् जीवन शैली जीने में समाधान है। समाधान बहुत हैं, किन्तु उस व्यक्ति के लिये कोई समाधान नहीं जिसमें अज्ञान भरा हो। प्रतिक्रमण उस अज्ञान को दूर करने में सहायक है।

प्रतिक्रमण में छः आवश्यकों का स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्व

अच्छे स्वास्थ्य के लिये रोग होने के कारणों को जानना एवं उनसे बचने का प्रयास आवश्यक होता है। जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं उनकी जीवन शैली को समझ उसके अनुरूप प्रेरणा लेना एवं उनसे सम्पर्क रख आवश्यक परामर्श लेना तथा भविष्य में रोग न हो उस हेतु शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है।

प्रतिक्रमण के प्रथम सामायिक आवश्यक में ध्यान के माध्यम से ९९ अतिचारों का सूक्ष्मता से चिन्तन कर अपने दोषों की समीक्षा की जाती है अर्थात् रोग होने के कारणों का निदान किया जाता है। दूसरे चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक में जो सभी रोगों से पूर्ण रूप से मुक्त हो चुके हैं उन तीर्थंकरों का आलम्बन सामने रखकर स्तुति करने से स्वस्थ बनने का उपाय समझ में आता है। हमारा पुरुषार्थ मन को चन्द्रमा के समान निर्मल, हृदय को सूर्य के समान तेजस्वी और विचारों में सागर के समान गंभीरता लाने का होता है। तीसरे वन्दना आवश्यक में तीर्थंकरों के प्रतिनिधि के रूप में वर्तमान में हमारे सामने उपस्थित पंच महाव्रत धारी आत्म-चिकित्सक साधु-साध्वियों से विनयपूर्वक वंदन कर स्वस्थ रहने का मार्गदर्शन प्राप्त कर आत्मा को विकार मुक्त बनाने के लिये प्रयास किया जाता है। वे ही सच्चे चिकित्सक हैं जो आत्मशुद्धि का उपचार बताते हैं। वन्दना करने से जोड़ों का दर्द होने की संभावना कम रहती है। खमासमणो द्वारा नमस्कार मुद्रा में पंजों पर बैठने से शरीर का संतुलन होता है एवं स्नायु संस्थान स्वस्थ हो जाता है। चतुर्थ आवश्यक प्रतिक्रमण में मन, वचन और काया के योगों से जिन दोषों का सेवन स्वयं से किया जाता है, दूसरों से कराया जाता है एवं दूसरों द्वारा किये गये अकरणीय कार्यों का अनुमोदन किया जाता है उन सब दोषों से निवृत्त होने के लिए कृत दोषों की निन्दा, आलोचना करना इस प्रतिक्रमण आवश्यक का उद्देश्य है। इसके लिए ९९ अतिचारों एवं १८ पापों में जो-जो अतिक्रमण हुआ है उसकी आलोचना कर पश्चात्ताप किया जाता है। भविष्य में वे दोष पुनः न लगें उस हेतु पुनः संकल्प लिया जाता है। पंच परमेष्ठी के पाँचों पदों पर विराजमान पूज्य जनों के गुणों का स्मरण कर वैसा बनने की भावना अभिव्यक्त की जाती है। प्राणिमात्र के साथ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से किसी भी दुर्व्यवहार हेतु क्षमा माँगकर मैत्री भाव को विकसित किया जाता है, जिससे तनाव, चिन्ता, भय दूर होते हैं एवं व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। पाँचवें आवश्यक में लगे हुए दोषों के उपचार हेतु कायोत्सर्ग किया जाता है। व्रतों में अतिचार लगना संयम रूप शरीर के घाव तुल्य होता हैं। कायोत्सर्ग उन घावों के लिए मरहम का कार्य करता है। अनुयोगद्वार सूत्र में कायोत्सर्ग को व्रण चिकित्सा बतलाया गया है। कायोत्सर्ग से आत्मा विशुद्ध हो शल्य रहित हो जाती है। द्रव्य दृष्टि से भी कायोत्सर्ग से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। कायोत्सर्ग सभी प्रकार के थकान से मुक्त होने की साधना है। व्यक्ति को अंदर से हल्कापन अनुभव होने लगता है। चैतन्य की अवस्था का बोध होने से कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुँचने का द्वार है। अन्तिम छठे प्रत्याख्यान आवश्यक से व्यक्ति भविष्य में रोग के कारणों से बचने एवं स्वयं की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु प्रायश्चित्त के रूप में प्रत्याख्यान द्वारा आत्मा का अहित करने वाली इच्छाओं का निरोध करता है। इन्द्रियों के विषय भोगों से अनासक्त होने का संकल्प लेकर प्राणों का अपव्यय रोकता है। प्रत्याख्यान से आवेग, उद्वेग, उन्माद छूट जाते हैं और मन शांत होने लगता है।

प्रतिक्रमण के विविध आसनों का स्वास्थ्य से संबंध

प्रतिक्रमण करते समय विविध पाठों का उच्चारण करते समय अलग-अलग आसन से बैठने अथवा खड़ा होने के पीछे भी स्वास्थ्य का रहस्य समाया हुआ है। प्रत्येक आवश्यक के प्रारंभ में आज्ञा लेने हेतु की जाने वाली वंदना से जोड़ों का दर्द कम होता है। माँसपेशियों में लचीलापन बना रहता है। शरीर में ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होता है एवं शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

ध्यान एवं आसन में मन के सारे आवेग शांत हो जाते हैं एवं प्राणों का अपव्यय रुक जाता है। सहनशक्ति बढ़ती है। तन, मन और वाणी शांत होते है।

बायाँ घुटना खड़ा रखकर जो पाठ बोले जाते हैं, उससे हमारा अहंकार शांत होता है जिससे सकारात्मक सोच विकसित होती है। गुणग्राहकता विकसित होती है।

दाहिना घुटना खड़ा करने से मनोबल दृढ़ होता है एवं लिये गये संकल्पों के पालन के प्रति उत्साह, जोश एवं सजगता आती है। खड़े रहने से प्रमाद में कमी एवं सजगता आती है। शरीर का संतुलन बना रहता है।

प्रतिक्रमण के प्रकार एवं उनका स्वास्थ्य से सम्बन्ध

अज्ञान एवं प्रमादवश किए गये वे सारे अकरणीय कार्य जो कषाय बढ़ाते हैं अथवा पाप की प्रवृत्तियाँ जो अशुभ कर्मों का बंध कर हमारी आत्मा को विकारी बनाती हैं, बंधन में डालती हैं एवं हमें रोगी बनाने में सहयोग करती हैं, उनका प्रतिक्रमण करना चाहिए। अध्यात्म में ऐसी प्रवृत्तियों को आस्रव अथवा पाप कहते हैं तथा स्वास्थ्य की भाषा में ये रोग के मुख्य कारण होते हैं। इन्हें मुख्यतया पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण- सत्य को सत्य मानकर स्वीकार करना, असत्य को असत्य मानकर छोड़ने का सम्यक् पुरुषार्थ करने का संकल्प करना ही मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता है। इन मिथ्या धारणाओं का प्रतिक्रमण नहीं हो तो ये रोग का कारण बन जाती हैं। मेरे दुःखों का कारण मैं स्वयं हूँ। मुझे कोई अन्य रोगी या दुःखी नहीं बना सकता। मेरा अज्ञान अथवा अधूरा ज्ञान एवं उसके अनुसार की गई अशुभ प्रवृत्तियाँ ही मेरे समस्त दुःखों एवं रोग के मुख्य कारण हैं। स्वदोषों को स्वीकार करने से व्यक्ति में सहनशीलता एवं धैर्य बढ़ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्रतिकूलता में दूसरों पर दोषारोपण की प्रवृत्ति समाप्त होती है। व्यक्ति स्वयं के प्रति सजग होने लगता है और रोग होने पर उपचार कराने से पूर्व अहिंसक-उपचारों को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है। करणीय-अकरणीय का विवेक जागृत होने से मन, वचन और काया की गलत प्रवृत्तियाँ छूटने लगती हैं, जिससे रोग होने की संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और पूर्व की भूलों के परिणामस्वरूप यदि रोग हो भी जाता है तो व्यक्ति अधिक परेशान नहीं होता। उसका संकल्पबल दृढ़ हो जाता है। अनाथी मुनि ने अपने दृढ़ संकल्प से असाध्य रोगों से मुक्ति प्राप्त की। सनत्कुमार चक्रवर्ती मुनि अवस्था में अपने रोगों से विचलित नहीं हुए। गजसुकुमाल मुनि सिर पर जलते हुए अंगारों की वेदना समभाव से सहन कर सके। मिथ्यात्व के प्रतिक्रमण से शरीर एवं आत्मा का भेदज्ञान होने लगता है और सम्यग्दृष्टि स्थिर होती है।

अव्रत का प्रतिक्रमण- व्रत से शरीर एवं इन्द्रियाँ संयमित होती हैं। स्वच्छन्दता पर नियन्त्रण होता है। संयम एवं मर्यादित जीवन ही स्वास्थ्य का मूलाधार होता है एवं स्वच्छन्दता रोगों का प्रमुख कारण। अतः जो व्रतों में अपना जीवन जीते हैं वे अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ होते हैं। व्रत मुख्यतया पाँच होते हैं। साधु उनका पूर्ण रूप से (३ करण एवं ३ योग से) पालन करते हैं, जबकि संसारी व्यक्ति उनको आंशिक रूप से पालन करने का संकल्प ले सकता है। अतः साधु के व्रतों को महाव्रत और श्रावकों के व्रतों को अणुव्रत कहा जाता है। पतंजलि के अष्टांग योग में इनको यम कहा गया है। हिंसा नहीं करना, असत्य नहीं बोलना, चोरी अथवा अनैतिकता का आचरण नहीं करना, कुशील सेवन नहीं करना और अपरिग्रह नहीं रखना, ये पाँच यम या व्रत हैं। इन व्रतों में जो-जो स्खलनाएँ (दोष लगे हों) हुई हों उनकी अनुप्रेक्षा कर भविष्य में वे दोष पुनः न लगें इस हेतु संकल्पबद्ध होना अव्रत का प्रतिक्रमण होता है। श्रावक के क्षेत्र का परिमाण करना, उपभोग-परिभोग की वस्तुओं की निश्चित सीमा रखना तथा अनावश्यक, अनुपयोगी प्रवृत्तियों से दूर रहना गुणव्रत कहलाते हैं। सामायिक और पौषध की आंशिक अथवा पूर्ण साधना करना निश्चित देश एवं काल तक गमनागमन आदि का त्याग करना तथा पंच महाव्रतधारी साधुओं को सुपात्र दान देना श्रावक के चार शिक्षा व्रत कहलाते हैं। इन बारह व्रतों के सम्यक् पालन में जो दोष लगे हैं, वे अव्रत प्रतिक्रमण से दूर हो जाते हैं। व्रतों का पालन ही संयम है। संयम ही जीवन है। संयमित जीवन ही स्वस्थ जीवन का मूलाधार होता है।

हमें छह पर्याप्तियों एवं दस प्राणों का दुरुपयोग न करके संयम करना चाहिए। इन पर संयम करने से रोग उत्पन्न होने की संभावना कम हो जाती है।

प्रमाद का प्रतिक्रमण- मैंने कितना समय अनावश्यक, अनुपयोगी, व्यर्थ कार्यों में बर्बाद किया। अपनी क्षमताओं का पूर्ण सदुपयोग नहीं किया। आत्मोत्थान के प्रति कितना सजग रहा। इस प्रकार प्रमाद के प्रतिक्रमण से आत्म-जागृति होने लगती है, आत्म-विकार दूर होने लगते हैं। जागृत मालिक के घर में रोग रूपी चोर के प्रवेश की संभावना नहीं रहती। रोग का कारण दूर होते ही स्वास्थ्य प्राप्त होने लगता है।

कषाय का प्रतिक्रमण- क्रोध, मान, माया, लोभ के चिन्तन से इन आवेगों के दुष्प्रभावों का बोध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये आवेग तनाव, भय, अधीरता, असंतोष एवं अनावश्यक कामनाओं को पैदा करते हैं जो हमारी वृत्तियों, भावों को प्रभावित करते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ अपना कार्य बराबर नहीं कर पातीं एवं व्यक्ति नकारात्मक सोच एवं मानसिक रोगों का शिकार बन जाता है। कषाय के प्रतिक्रमण से कषायों में मंदता आती है। कर्मों की निर्जरा होने से आत्मा विशुद्ध होने लगती है, मानसिक रोग नहीं होते।

अशुभयोग का प्रतिक्रमण- मन, वचन और काया के योगों के चिन्तन से अकरणीय अशुभ प्रवृत्तियाँ कम होने लगती हैं तथा करणीय शुभ प्रवृत्तियाँ होने लगती हैं। परिणामस्वरूप करणीय कार्य में प्रवृत्ति होने के साथ-साथ अन्य को भी उसकी प्रेरणा देने तथा सम्यक् पुरुषार्थ करने वालों की अनुमोदना करने का सहज मानस बन जाता है। अकरणीय कार्य ही रोगों के मुख्य कारण होते हैं। अतः अशुभ से शुभ में प्रवृत्ति करना स्वास्थ्य को अच्छा बनाने में सहायक होता है। इस प्रकार पाँचों आस्रवों के प्रतिक्रमण द्वारा आत्म-विकारों के दूर होने से व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की सीमाएँ

आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान एवं अधिकांश चिकित्सक बाह्य कारणों से उत्पन्न शरीर में रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए तो प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु मन में उत्पन्न आत्मा को कलुषित करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, राग-द्वेष, असत्य, अनैतिकता, घृणा, चिन्ता, भय, तनाव, असंयम आदि अशुभ प्रवृत्तियों के विकारों की गन्दगी से उत्पन्न रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये न तो उनका ध्यान ही जाता है और न उनके पास इसको दूर करने का कोई सरल उपाय है। ये ही घुन या कीट हैं जों रोगोत्पत्ति का मुख्य कारण बन हमारे दिल, दिमाग और देह को दुर्बल बनाते हैं।

उपसंहार

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रतिक्रमण से कषाय मंद होते हैं, आत्मा की विशुद्धि होती है, भावों में निर्मलता आती है, सकारात्मक सोच विकसित होती है। स्वविवेक एवं स्वदोष-दृष्टि जागृत होने से आचरण में सजगता आती है, परिणामस्वरूप शरीर में स्थित सभी ऊर्जा चक्र सक्रिय रहने लगते हैं और अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ आवश्यकतानुसार संतुलित अनुपात में स्रावों का सृजन करने लगती हैं, जिससे शरीर, मन, मस्तिष्क और आत्मा ताल से ताल मिलाकर पूर्ण समन्वय से कार्य करने लगते हैं। मानसिक रोगों को पैदा करने वाले प्रमुख कारण क्रोध, भय, तनाव, अधीरता आदि दूर हो जाते हैं, सहनशीलता और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। इसी कारण श्रावक एवं साधुओं के लिए प्रतिक्रमण को आवश्यक करणीय कहा है। इस प्रकार सही विधि द्वारा भावपूर्वक किया गया प्रतिक्रमण स्वास्थ्य का सरलतम, सहज, सस्ता, स्वावलंबी, अहिंसक दुष्प्रभावों से रहित, पूर्णतः वैज्ञानिक, प्रभावशाली, निर्दोष उपचार है जिससे न केवल शरीर अपितु मन एवं आत्मा भी स्वस्थ होता हैं।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org